JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

रीतिकाल:संभावना के स्वर

डॉ लता
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग श्री वेंकटेश्वर महाविधालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अखिलेश सिंह
शोधार्थी दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना--

हिंदी साहित्य के अविरल प्रवाह के तीसरे पड़ाव को आलोचकों ने रीतिकाल की संज्ञा से अभिहित किया है।रीतिकाल का नामकरण प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है।रीतिकाल की साहित्यिक कृतियों के अध्येताओं में रीतिकाल की साहित्यिक समृद्धि को लेकर एकमत होने के बावजूद कुछ विशेष धारणाओं के आधार पर इस समृद्ध कालखंड को हासिये पर धकेलने का प्रयास किया गया।प्रस्तुत शोध पत्र में इस विशेष कालखंड के उन पहलुओं की ओर निर्देश किया गया है जिन पर विचार की आवश्यकता जीवंत है।

बीज शब्द-

रीतिकाल, रीतिबद्ध,रीतिमुक्त, रीतिसिद्ध,मर्यादा,नैतिकता,साहित्यिकता,श्रृंगारिकता, आनंद,अश्लीलता,संभावना....

मूल आलेख-

कवित्व के दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य का एक समृद्ध कालखंड आज वैचारिकी के द्वंद्व के बीच कराह रहा है। अध्यताओं ने इस कालखंड की समृद्धि को अंदर ही अंदर स्वीकार किया है परंतु कुछ विशेष वैचारिकी के दबाव में इस कालखंड की समृद्धि को मुखर रूप देने से न केवल कतराए हैं वर्णन इसकी समृद्धि को धूमिल भी किया है। रीतिकाल की प्रारंभिक बहस देव और बिहारी को लेकर शुरू होती है ।मिश्र बंधुओ ने हिंदी नवरत्न में रीतिकाल के पांच कवियों को रखा है -देव ,बिहारी, त्रिपाठी बंधु (भूषण व मतिराम) एवं केशवदास। हिंदी साहित्य के नौ सर्वश्रेष्ठ कवियों में पांच कवि अकेले रीतिकाल से संबंध रखते हैं ।इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है-" शुद्ध साहित्य की दृष्टि से निर्माण करने वाले कर्ता इस युग में जितने अधिक हुए हैं हिंदी साहित्य के सहस्त्र वर्षों के दीर्घकालीन जीवन में उतने अधिक कर्ता शुद्ध साहित्य की दृष्टि से निर्माण करने वाले नहीं हुए हैं, आधुनिक काल में भी नहीं। हिंदी का सच्चा साहित्य युग यदि कोई था तो वस्तुतः यही था।"1

हिंदी पटल पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के उदय ने रीतिकाल के पतन का मार्ग प्रशस्त किया ।महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मिश्र बंधुओं के रीति-वादी विमर्श को खुले तौर पर नकारा है ।महावीर प्रसाद द्विवेदी ,आचार्य शुक्ल प्रभृत विद्वानों के रीतिकालीन विचारों की जांच पड़ताल में यह बात खुले तौर पर जाहिर होती है कि इन

विद्वानों ने रीतिकाल के परख हेतु दो कसौटियां बनाईं-नैतिकता और मर्यादा और इन कसौटीइयों का बीजारोपण कहां से हुआ यह भी जाहिर। रीतिकाल की साहित्यिक समृद्धि को भक्ति काल के बरक्स नैतिकता और मर्यादा की कसौटी पर रखकर धराशाई कर दिया गया।

रीतिकाल के साहित्यिक मूल्यांकन की आवश्यकता आज भी बनी हुई है। समकालीन अध्यताओं ने रीतिकालीन साहित्य के पुनर्विचार की बात खुले तौर पर की है एवं रीतिकाल की संभावनाओं की ओर इशारा किया है। डॉ नामवर सिंह-" एक दौर था जब मेरे गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शांतिनिकेतन में थे तब उन्होंने एक कविता लिखी थी वह कविता रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कविता से प्रेरित थी ।रवींद्रनाथ जी की वह कविता थी -शेइ काले(वह समय)--

" जदि आमार जनम होतो कालीदासेर काले
दैबै होतो दशम रत्न नव रत्न माझे।"

सौभाग्य से यदि मेरा जन्म कालिदास के समय में हुआ होता,तो नवरत्नों के बीच मैं भी दसवां रत्न होता। द्विवेदी जी ने भी उसी से प्रेरित होकर कविता लिखी-

" यदि मैं होता रसिक बिहारी कवि के युग में
हाय! हुआ मैं नहीं बिहारी कवि के युग में।"2

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृत उत्कृष्ट कोटि के मर्मज्ञ के हृदय में भी हाय !हुआ मैं नहीं बिहारी कवि के युग में यह टीस मुखर तौर पर दिखती है ।आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा के समय में बहुत अंतराल नहीं है ।इस बात पर विचार करने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है कि आखिरकार रीतिकाल की कौन सी विशेषताएं हैं जो हजारी प्रसाद द्विवेदी के हृदय में यह टीस पैदा करती हैं कि वे उसे कालखंड में उपस्थित न रह सके।

हिंदी आलोचना के सिद्धहस्त पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल के रीतिकालीन अध्ययन में विरोधाभास सहज ही दिखता है ।समूचे रीतिकाल के मूल्यांकन में तो आचार्य शुक्ल जिन मान्यताओं पर इस कालखंड को खारिज करते दिखाई पड़ते हैं, कवियों के व्यक्तिगत वर्णन के समय उन्हीं कसौटियों पर उनकी तारीफ करते नहीं थकते बावजूद इसके कि जाहिर है आचार्य शुक्ल की कलम से तारीफ बड़े दबे पांव निकलती है। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है -"रीतिग्रंथों के रचयिता भावुक ,सहृदय और मृदुल कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यंग्यों का शास्त्रीय निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों विशेषतः श्रृंगार रस और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदय ग्राही उदाहरण अत्यंत ही प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए ।"3आगे वे लिखते हैं -"इस परंपरा द्वारा साहित्य के विकास में कुछ बाधा भी पड़ी ।कवियों की दृष्टि एक प्रकार से बंधी हुई और सीमित हो गई ।क्षेत्र संकुचित हो गया ।कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया।" 4आचार्य शुक्ल के इस वक्तव्य पर नामवर सिंह ने टिप्पणी की है -"अगर इस दृष्टि से देखा जाए तो मुझे दो बातें कहनी है- पहली तो यह कि कालिदास का हम क्या करें उन्होंने तो एक ही रस में बंधकर लिखा ।क्या इससे उनकी दृष्टि सीमित मान ली जाएगी ??दूसरी बात यह कि रीतिकालीन प्रत्येक कवि की अपनी व्यक्तिगत पहचान है। बिहारी को पढ़कर कभी भी आपको यह भ्रम नहीं होगा कि यह किसी और का दोहा है, घनानंद और मतिराम में आपको फर्क साफ मालूम होगा ,देव और घनानंद में फर्क मालूम होगा। हर कवि की अपनी निजी विशिष्टता है।"5

हिंदी साहित्य में 20वीं सदी के तीसरे दशक में प्रगतिशीलता का आगमन हुआ इससे यह अपेक्षित था कि वह रीतिकाल के महत्व को समझेगा ,परंतु चीजें इसके विपरीत घटित हुई ।डॉ नामवर सिंह ने हालांकि वे खुद

मार्क्सवादी थे बावजूद इसके, साहित्यिक अभिरुचि के संदर्भ में फ्रेडरिक जेम्सन के एक लेख 'पॉलिटिक्स आफ प्लेजर 'के एक वाक्य की याद दिलाते हैं -"साहित्य के मूल्यांकन में मार्क्सवादी लोग क्यों इतने प्यूरिटन होते हैं ।आनंद की वस्तु से इनको क्यों इतना परहेज रहता है।" इस दृष्टि से भी रीतिकाल पर विचार की आवश्यकता है। दरअसल अध्येताओं ने जिसे अश्लीलता घोषित कर दिया गया वह इस कालखंड में अश्लीलता कम सौंदर्य और आनंद की वस्तु अधिक है ।

1700- 19 00 के बीच समूचे 200 वर्षों के कालखंड में लिखे गए साहित्य का तत्कालीन समाज से तारतम्य बिठाने की आवश्यकता आज भी जस की तस बनी हुई है ।दरअसल रीतिकाल कई अर्थों में अपने समय की समस्याओं का न केवल प्रकटीकरण करता है बल्कि उसके जटिल परिणाम की ओर इशारा करते हुए उसके समाधान का मार्ग भी प्रशस्त करता है ।भूषण ,पद्माकर, दीनदयाल गिरी, घासीराम आदि के साहित्य पर इस दृष्टि से विचार की संभावना आज भी है ।रीतिकाल का तत्कालीन समाज से क्या संबंध रहा है इस पर मैनेजर पांडेय का कथन है -"अपने समय के समाज और इतिहास से जैसा संबंध रीतिकाल की कविता का है वैसा संबंध भक्ति काल में भी नहीं है।"6 ध्यान देने की बात है कि मैनेजर पांडेय ने लखनी हेतु भक्तिकालीन कवि सूरदास को चुना बावजूद इसके उन्हें रीतिकालीन साहित्य और समाज का परस्पर संबंध आकर्षित करता है। रीतिकाल के समूचे 200 वर्षों के साहित्य और समाज के सहसंबंधों पर नई दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है ।

कवित्व की दृष्टि से रीति कविता की पूर्ण शिनाख़्त की आवश्यकता अभी है। रीति कविता के अध्येताओं ने जिन कसौटियों पर रीति कविता की जांच पड़ताल की वे इस साहित्य के साथ पूर्ण रूप से न्याय करती नहीं नजर आती हैं ।कविवर केशव की अनुप्रास योजना के आधार पर समूचे रीतिकालीन काव्य को अनुप्रसों की निष्प्राण प्रदर्शनी कहकर आलोचना के कटघरे में ला खड़ा कर दिया गया ।जरा से ठहराव के साथ विचार करने पर यह बात सहज ही उभर आती है कि रीतिकालीन कवियों की अनुप्रास योजना उनकी कलात्मक का सकारात्मक पहलू है और यह रीति कविता के सौंदर्य को सहज ही बढ़ा देती है--

" झहरि-झहरि झीनी बूँद है परति मानों,
घहरि-घहरि घटा घेरी है गगन में।"

रीतिकाल के स्त्री पक्ष के अध्ययन में दो तरह के दृष्टिकोण हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। प्रथम- रीतिकाल को स्त्री को केवल भोग की वस्तु के रूप में देखता है ,दूसरा- इस बात से इनकार किए बगैर कि रीतिकाल की स्त्री को भोग की वस्तु समझा गया है उसके अन्य रूपों का वर्णन करता है। रीतिकाल के स्त्री पक्ष पर विचार करने वाले अध्येताओं के मत उनकी व्यक्तिगत मान्यताओं से ग्रस्त रहे हैं। पितृ सत्ता, नैतिकता मर्यादावाद आदि के पक्षधर अध्यताओं ने रीतिकाल की स्त्री चेतना को स्पष्ट तौर पर नकारा है। वहीं दूसरी धारा के अध्यताओं ने रीतिकाल में स्त्री को प्राप्त उस अवकाश पर विचार किया है जिसमें वह अपनी कामनाओं, वासनाओं आदि का बेझिझक जिक्र कर सके। जगन्नाथ दास रत्नाकर संपादित बिहारी सतसई का पहला दोहा है-

' मेरी भव बाधा हरो राधा नगरी सोई'

समूचे हिंदी साहित्य में संभवतः पहली बार यह वर्णन उपस्थित होता है जहां राधा को कष्ट निवारक की भूमिका में वर्णित किया गया है यानी कृष्ण के न केवल बरक्स राधा को खड़ा किया गया बल्कि कृष्ण से एक दर्ज ऊपर का स्थान प्रदान किया गया है।

गुरु गोविंद सिंह जी द्वारा वर्णित चरित्र आख्यान में ऐसी स्त्री का वर्णन मिलता है जो किसी पुरुष के प्रति आकर्षित होने पर उस पुरुष से अपनी कामेच्छा का जिक्र करती है एवं पुरुष द्वारा ठुकराए जाने पर उसे तरह-तरह से प्रताड़ित करवाती है।रीतिकालीन साहित्य स्त्री के ऐसे वर्णन से भरा पड़ा है जरूरत है उसे तटस्थ होकर तलाशने की ।

रीतिकाल पर यह आरोप लगाया जाता है कि रीतिकाल में स्वकीया को ही आदर्श नायिका के रूप में वर्णित किया गया है ।इस संदर्भ में कामशास्त्र में वर्णित प्रसंग पर ध्यान देना चाहिए कामशास्त्र में चार प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है -पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी ।इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ हैं और इसीलिए सौंदर्य का आदर्श उनके लक्षणों में ही ग्रहण किया गया है ।दूसरी ध्यान देने की बात यह है की" काव्य में यदि विशेष कोई कारण ना हो तो स्त्री का या तो सत्गुण प्रधान वर्णन करते हैं या रजोगुण प्रधान (विलासिनी) ।"

ध्यातव्य है कि 'लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है 'यानी सामाजिक पटल पर स्त्री को घर के कोने से निकलकर समाज में उनकी महती भूमिका और भागीदारी तय करने में लंबा वक्त लगना तय है ।आदिकाल से होकर भक्ति काल होते हुए जब हम रीतिकाल पर पहुंचते हैं तब व्यावहारिक रूप में स्त्री साहित्य के केंद्र में आई हुई दिखती है। साहित्य समाज का दर्पण जरूर होता है पर वह समाज को रास्ता दिखाने का कार्य भी करता है ।रीतिकाल में स्त्री साहित्य के केंद्र में तो आती है पर समाज के केंद्र में आना अभी बाकी था जो आज के दौर में हमें दिखता है ।आदिकालीन साहित्य में युद्ध के कारण के रूप में स्त्री को दर्शाया गया है यानी स्त्री का दर्जा एक वस्तु से बढ़कर कुछ नहीं है ,जिसके लिए दो राजा आपस में लड़ते हैं विजेता का उस वस्तु पर अधिकार हो जाता है ।यानी स्त्री का अपना स्वत्व कुछ भी नहीं है ।भक्ति काल में एक तरफ लिखा जाता है - 'जिमि स्वतंत्र होइ बिगड़हिं नारी' तो दूसरी तरफ 'माया महाठगिनि हम जानी'। ऐसे में रीतिकालीन साहित्य ने स्त्री को जो अवकाश दिया है वह सराहनीय है । रीतिकाल हिंदी पटल पर स्त्री मुक्ति का प्रथम चरण है अर्थात वर्तमान स्त्री रीतिकालीन स्त्री का विकसित रूप है। रीतिकाल की स्त्री के विषय में सोचते समय हम आधुनिक स्त्री के आधिकारिक मानदंडों के घेरे में रीतिकालीन स्त्री को लाकर खड़ा कर देते हैं ।इस तथ्य की ओर ध्यान देने की आवश्यकता आज भी बनी है कि बहुत हद तक स्त्री देह की स्वतंत्रता स्त्री की स्वतंत्रता का निर्धारण करती है।इस पर इस पर नए सिरे से विचार की आवश्यकता है।

निष्कर्ष--- डॉक्टर नामवर सिंह कहते हैं -" जिसे हमारे इतिहासकारों ने उत्तर मध्यकाल कहा है ,गदर के पहले तक का काल, वह उर्दू शायरी में नजीर अकबराबादी,मीर और गालिब का काल है ,गोल्डन पीरियड है ठीक उसके समानांतर हिंदी में जो कविता लिखी जा रही थी उसे कायदे से स्वर्ण युग कहने के बजाय पतन का काव्य कहा जाता है ।"रीतिकाल की संभावनाओं की ओर आज के आलोचकों ने कमोबेश ध्यान दिया है जरूरत है रीतिकाल पर तटस्थ दृष्टिकोण से विचार करने की ,कविता की कसौटी पर रीतिकाल को परखने की ,उसके सौंदर्य पक्ष की ओर हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित करने की। ललित कलाओं के दृष्टिकोण से रीतिकाल में अभी अपार संभावनाएं हैं जरूरत है एक तटस्थ दृष्टिकोण से उसके उसकी शिनाख़्त की। दूसरे शब्दों में आम के पेड़ की आलोचना इस आधार पर करना कहाँ तक जायज़ है कि वह नीम का पेड़ नहीं है..कमोबेश यही रीतिकाल के साथ किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ--

1-घनानंद कवित्त--आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-पृष्ठ सं-7-9

2-रीतिकाव्य:पुनर्विचार-नामवर सिंह(संकलन-रीतिकाल:मूल्यांकन के नए आयाम-प्रभाकर सिंह)पृष्ठ सं-28

3-हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल-पृष्ठ सं-160-161

4-हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल-पृष्ठ सं-160-161

5-रीतिकाव्य:पुनर्विचार--नामवर सिंह(संकलन-रीतिकाल:मूल्यांकन के नए आयाम-प्रभाकर सिंह)पृष्ठ सं-29-30

6- रीतिकाल:मिथक और यथार्थ-मैनेजर पांडेय-पृष्ठ सं-50-58